एक झरोखा

गुरु-परताप साध की संगति

अनंत-अनंत काल के बीत जाने पर कोई सद्गुरु होता है। सिद्ध तो बहुत होते हैं, सद्गुरु बहुत थोड़े। सिद्ध वह जिसने सत्य को जाना; सद्गुरु वह जिसने जाना ही नहीं, जनाया भी। सिद्ध वह जो स्वयं पा लिया लेकिन बांट न सका; सद्गुरु वह, जिसने पाया और बांटा। सिद्ध स्वयं तो लीन हो जाता है परमात्मा के विराट सागर में; मगर वह जो मनुष्यता की भटकती हुई भीड़ है--अज्ञान में, अंधकार में, अंधविश्वास में--उसे नहीं तार पाता। सिद्ध तो ऐसे है जैसे छोटी-सी डोंगी मछुए की, बस एक आदमी उसमें बैठ सकता है। सिद्ध का यान हीनयान है; उसमें दो की सवारी नहीं हो सकती, वह अकेला ही जाता है। सद्गुरु का यान महायान है; वह बड़ी नाव है; उसमें बहुत समा जाते हैं; जिनमें भी साहस है, वे सब उसमें समा जाते हैं। एक सद्गुरु अनंतों के लिए द्वार बन जाता है।

सिद्ध तो बहुत होते हैं, सदगुरु बहुत थोड़े होते हैं। और सद्गुरु जब हो तो अवसर चूकना मत।

सद्गुरु का संदेश क्या है? फिर सद्गुरु कोई भी हो--गुलाल हो, कबीर हो कि नानक, मंसूर हो, राबिया कि जलालुद्दीन--कुछ भेद नहीं पड़ता। सद्गुरुओं के नाम ही अलग हैं, उनका स्वर एक, उनका संगीत एक; उनकी पुकार एक, उनका आवाहन एक; उनकी भाषा अनेक होंगी मगर उनका भाव अनेक नहीं। जिसने एक सद्गुरु को पहचाना उसने सारे सद्गुरुओं को पहचान लिया--अतीत के, वर्तमान के भी, भविष्य के भी। सद्गुरु में समय के भेद मिट जाते हैं--जो पहले हुए हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो अभी हैं, वे भी उसमें मौजूद; जो कभी होंगे, वे भी उसमें मौजूद। सद्गुरु शुद्ध प्रकाश है जिस पर कोई भी अंधकार की सीमा नहीं।

जो झुकेगा सद्गुरु के चरणों में उसके लिए द्वार खुलने लगते हैं। झुके बिना ये द्वार नहीं खुलते। जो अकड़ा है उसके लिए तो द्वार बंद हैं। खुला द्वार भी उसके लिए बंद है क्योंकि अकड़ के कारण उसकी आंख बंद है। अहंकार आदमी को अंधा करता है; विनम्रता उसे आंख देती है। जो जितना सोचता है 'मैं हूं' उतना ही परमात्मा से दूर होता है। जो जितना जानता है 'मैं नहीं हूं', उतना परमात्मा के निकट सरकने लगा, उतनी उपासना होने लगी, उतना उपनिषद जगने लगा, उतनी निकटता बढ़ने लगी, उतना सामीप्य। और जिसने जाना कि 'मैं हूं ही नहीं', वह परमात्मा हो जाता है। जिसने जाना कि मैं हूं ही नहीं, वह कह सकता है--अहं ब्रह्मास्मि-- मैं ब्रह्म हूं।

इस किनारे पर उस किनारे की खबर तो वही दे सकता है जो उस किनारे पहुंच गया हो। सिद्ध भी उस किनारे पहुंचते हैं मगर वे लौटते नहीं, वे गए सो गए। जैन और बौद्ध शास्त्रों ने उन्हें अर्हत कहा है। गए सो गए। वे फिर लौटते नहीं, वे खबर देने भी नहीं लौटते। डूबे सो डूबे। वे इस किनारे फिर नहीं आते। और जो उस किनारे जाकर इस किनारे आ जाते हैं, उन्हें बौद्धों ने बोधिसत्व कहा है, जैनों ने तीर्थंकर कहा है। उनकी करुणा अपार है। सत्य का अपूर्व आनंद छोड़कर, ब्रह्म का महासुख छोड़कर, जहां कमल ही कमल खिले हैं शाश्वतता के, उन्हें छोड़कर लौट आते हैं--इस किनारे पर, कंटकाकीर्ण किनारे पर--जो पीछे भटकते आ रहे हैं उन्हें खबर देने--कि वे सद्गुरु हैं।

ऐसे सद्‌गुरुओं के साथ तुम एक कदम भी उठा लो तो पूर्णिमा आ जाए जीवन में। ऐसे तो अमावस में और पूर्णिमा में पंद्रह दिन का फर्क होता है, लेकिन मैं जिस अमावस और जिस पूर्णिमा की बात कर रहा हूं, उसमें एक कदम का ही फासला है : समर्पण--और पूर्णिमा; अहंकार--और अमावस।

सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। स्वयं को पकड़े बैठे रहे तो तड़फते ही रहोगे, भटकते ही रहोगे। फिर रात का कोई अंत नहीं, फिर सुबह नहीं होगी। लेकिन अगर कहीं कोई चरण पा लो जहां प्रेम उमगे, जहां श्रद्धा जन्मे, तो साहस करना, दुस्साहस करना, जोखम उठा लेना--झुक जाना, क्योंकि उसी झुक जाने में जीत है; मिट जाना, क्योंकि उसी मिट जाने में होना छिपा है।

गुरु-परताप साध की संगति!